REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 9 | JUNE - 2022

प्रेमचन्द और अज्ञेय के औपन्यासिक पात्रों का मानसिक अन्तर्द्वन्द्वः एक तुलनात्मक

बंदना श्रीवास्तव

प्रस्तावनाः

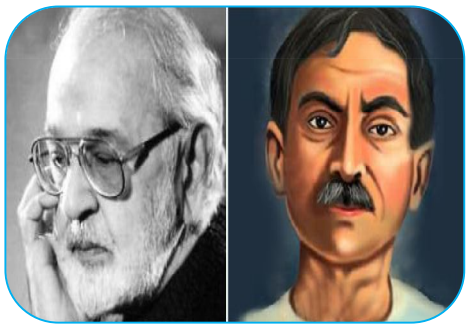

प्रेमचन्द और अज्ञेय के पात्रों में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का अध्ययन करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि अन्तर्द्वन्द्व है क्या?

अन्तर्द्वन्द्व से आशय है करणीय और अकरणीय अर्थात् क्या करना है और क्या नहीं करना है मन में उपजे इस भाव को या परस्पर विरोधी भावनाओं को या दूसरे शब्दों में कहें उहापोह की स्थिति को ही अन्तर्द्वन्द्व कहते हैं।

मुख्यतः प्रेमचन्द और अज्ञेय दो अलग–अलग साहित्यिक शैलियों एवं विचारधाराओं से सम्बद्ध हैं। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में सामाजिक यथार्थवाद का चित्रण किया है वहीं अज्ञेय ने मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का। जहां प्रेमचन्द सामाजिक यथार्थ के सरोकारों को संप्रक्त करते हुए उपन्यास के पात्रों का चरित्र गुम्भित करते हैं, वहीं अज्ञेय के पात्र मनोवैज्ञानिक सरोकारों को।

अज्ञेय व्यक्तिवादी कलाकार हैं उनकी मनोवैज्ञानिकता भी व्यष्टिपरक ही है। उन्होंने व्यक्ति के माध्यम से ही समष्टि (समाज) का वर्णन किया है। शेखरः एक जीवनी में यह तथ्य आद्यन्त प्रमाणित होता हुआ प्रतीत होता है। अतएव आलोचक उन्हें व्यक्तिनिष्ठ मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार मानते हैं। प्रेमचन्द ने उपन्यास की धारा को समाजपरक मोड़ प्रदान करते हुए उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। यों तो हिन्दी में उपन्यास लगभग सन् 1907 से ही लिखे जाने लगे थे, उन्हें कोई ठोस आकार नहीं मिल पाया था। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ही एक ऐसे उपन्यासकार थे जिन्होंने उपन्यास को सर्वप्रथम ठोस आकार प्रदान किया। उन्होंने ही उसे तिलस्मी, ऐय्यारी, चमत्कार आदि से बाहर निकालकर जीवन के निकट उपस्थित कर सार्थकता प्रदान की। प्रेमचन्द ने ही सबसे पहले सम–सामयिक जीवन की सभी प्रमुख समस्याओं को अपने उपन्यासों में प्रतिष्ठापित किया। गॉवों और किसानों का जैसा अनूठा एवं वास्तविक चित्रण उन्होंने किया, वैसा सम्भवतः आज तक किसी ने नहीं किया। वे समाज में जो कुछ देखते थे, उसे एक निश्चित आदर्श में डालने का प्रयास करते थे, क्योंकि उनके साथ किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता नहीं थी, प्रेमचन्द जी के सभी उपन्यास 'साहित्य समाज का दर्पण है' इस युक्ति की पुष्टि करते हैं। उनके उपन्यासों में उस युग की एक सच्ची तस्वीर प्राप्त होती है।

अज्ञेयजी ने हिन्दी उपन्यास जगत में सन् 1940 में पदापर्ण किया। उनके समकालीन उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, जोशी, भगवतीचरण वर्मा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

प्रेमचन्दोत्तर युग के कथाकारों की जिस श्रेणी में अज्ञेय जी का नामोल्लेख किया जाता है, वह श्रेणी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की है जो जैनेन्द्र द्वारा संकेतिक नयी दिशा तो विकसित करती ही है, पर प्रेमचन्द की भविष्यवाणी की भविष्य में उपन्यास चरित्र प्रधान होगा, को चरितार्थ भी करती है। इस युग के कथाकारों की दृष्टि पूरे समाज से हटकर व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित हुई। इसके पूर्ववर्ती युग में अर्थात् प्रेमचन्द युग में इस तरह के विचारधारा का निर्माण नहीं हो पाया था।

जैसे–जैसे आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होता है, वैसे–वैसे मनुष्य के विचारों, भावनाओं एवं मान्यताओं में भी परिवर्तन होता चलता है। कहने का तात्पर्य है कि युग के अनुसार मनुष्य की मान्यताएं बदलती हैं, भावनायें बदलती हैं और विचार, बिना बदले नहीं रहते। प्रगति के नवीन मार्ग परिवर्तन के कारण प्रशस्त होते हैं। यद्यपि अज्ञेय जी के साथ इस प्रकार की परिस्थितिया तो नहीं थीं लेकिन फिर भी मनोवैज्ञानिक चेतना के कारण उन्होंने प्रेमचन्द परम्परा से सर्वथा भिन्न मान्यताओं, विचारों एवं भावनाओं को प्रतिष्ठित किया है, जिससे हिन्दी साहित्य–जगत इस नये रूप रंग से अति समृद्ध हो सका है। जहॉ तक प्रेमचन्द की बात है, उन्होंने यदि हिन्दी उपन्यास जगत को टाइप दिया तो अज्ञेय जी ने दिया व्यक्ति। शेखरः एक जीवनी का 'शेखर' ही व्यक्ति है जो पूरे उपन्यास में छाया हुआ है।

अज्ञेय जी ने व्यक्ति के अन्तर्जगत को स्पर्श किया और इस जगत में बैठकर वैचारिक संघर्ष, आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व एवं विभिन्न कुंठाओं की निरसन प्रकिया को पूरी तरह से वाणी दी और कुछ गुत्थियों को जिन्हें उन्होंने मानव मन के अन्तराल में डुबकी लगाकर पाया, उसे बाह्य जगत में रखने का प्रयास किया। ज्वाला प्रसाद खेतान के अनुसार–"यह अज्ञेय के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व की शक्ति ही है कि मानसिक संगठन की इतनी महत्वपूर्ण असंगति के उपरान्त भी उनकी चेतना में जड़ता नहीं आयी और अंतः संघर्ष के उपरान्त भी सदा विकासशील रही है। अपनी विश्लेषणकर्मी बौद्धिकता से उन्होंने अपने व्यक्तित्व की मौलिक एकांगिता को समझा और समझकर उससे छुटकारा पाने की चेष्टा की। यह विकासशीलता, चेतन संगठनशीलता या चेतना के परिष्कार का आग्रह एवं सामर्थ्य ही वह विशेषता है जो रचनात्मक व्यक्ति की साधारण रुग्ण व्यक्तित्व से अलग करती है। वरना केवल तीव्र अनुभूति सामर्थ्य ही व्यक्ति को श्रेष्ठ कलाकार नहीं बनाती।"[1]

प्रेमचन्द यदि महान हैं तो इसलिए कि उन्होंने किसानों के मानसिक गठन और मध्यवर्ग के दृष्टिकोण को उस समय गम्भीर विश्वास और उत्साह के साथ वाणी दी, जिस समय इस देश के समाजिक और राजनीतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। उनके ग्रन्थों में आर्थिक शोषण और सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध कृषक वर्ग की पुन्जीभूत घृणा और कटुता की झलक मिलती है। उसमें इस पूँजीवाद या पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते हुए प्रभाव के विरुद्ध निम्न–मध्यमवर्ग के विरोध और घृणा के भी दर्शन होते हैं, जो इस युग में देश में व्याप्त हो रही थी।

अज्ञेय ने जब 'शेखरः एक जीवनी' लिखा उस समय हिन्दी उपन्यास घटना और कथानक बहुलता से ऊपर उठकर चरित्रांकन को महत्व दे रहा था। चारित्रिक व्यंजना की दृष्टि से प्रेमचन्द निश्चय ही हिन्दी के शीर्षस्थ उपन्यासकार रहेंगे। पर चरित्र के आचरण और व्यवहार में गहरे स्तर पर संगति की खोज अभी आरम्भ न हुई थी। अज्ञेय इस दिशा के आरम्भिक प्रयोगकर्ताओं में हैं, जिन्होंने चरित्र के आचरण को समझने के लिए समग्र व्यक्तित्व और उसकी संवेदनाओं को समझने का उपक्रम शुरू किया।

उपन्यासकार अज्ञेय मनोविश्लेषणवाद से अधिक प्रभावित हैं। उनमें समाज की अपेक्षा व्यक्ति का प्राधान्य हैं। 'शेखरः एक जीवनी' में यह तथ्य स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है। अज्ञेय ने स्वयं ही इस तथ्य को स्वीकार किया है–"शेखरः एक जीवनी, निःसन्देह एक व्यक्ति के युग संघर्ष का प्रतिबिम्ब भी है। इतना और ऐसा निजी यह नहीं है कि उसके दावे को आप 'एक' निजू आदमी की बात कहके उड़ा सकें, मेरा आग्रह है कि उसमें मेरा समाज और मेरा युग बोलता है और वह मेरे युग का प्रतीक है।"[2]

प्रेमचन्द मनोविज्ञान का चित्रण मनोविज्ञान के लिए नहीं करते हैं जैसा कि अज्ञेय करते हैं, बल्कि जीवन की वास्तविकता का चित्रण करते हैं। उनकी यह विशेषता रही है कि उन्होंने पात्रों का चयन अपने आस–पास के मानव समूह से ही किया है इसलिए प्रेमचन्द के पात्र सहज ही जीवन्त और परिचित बन सके हैं। प्रेमचन्द के पात्र जातीय अधिक हैं वैयक्तिक कम। उनके पात्र प्रायः किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और अपने परिवेश की समस्त विशेषताओं से युक्त हैं। उन पात्रों के चरित्र से किसी न किसी वर्ग का चरित्र प्रस्तुत होता है।

अज्ञेय मानव के अन्तर्मन की गहराइयों में पैठने वाले अपने ढंग के एकमात्र ऐसे कलाकार हैं, जिन्होंने फ्रायड के अवचेतन मनोविज्ञान की विस्तृत जानकारी प्राप्त की और उसके अनुसार भय, सेक्स तथा अहम् को

[1] अज्ञेय का कथा साहित्य, लेखक– डा0 देवकृष्ण मौर्य, पृष्ठ– 333

[2] अज्ञेयः संम्पादक विश्वनाथ त्रिपाठी, ज्वाला प्रसाद खेतान, पृष्ठ– 259

आधार मानकर अपने चरित्रों की सृष्टि की। 'शेखरः एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' के अधिकांश पात्रों की सृष्टि उपर्युक्त आधार पर ही हुई है। बालक शेखर के जन्म एवं मृत्यु सम्बन्धी प्रश्नों के ठीक–ठीक उत्तर न देने के कारण तथा सदा डॉट–फटकार एवं निषेधों का शिकार बनाने के कारण शेखर विद्रोही हो जाता है। वह हर क्षेत्र में क्रान्ति करने लगता है। परम्पराओं को बदलकर उन्हें अपने अनुकूल बनाने के लिए व्याकुल दिखायी पड़ता है। लेकिन अज्ञेयजी के पात्र चाहे 'शेखरः एक जीवनी' की शशि और शेखर हों, चाहे 'नदी के द्वीप' की रेखा और भुवन, वे समाज की परवाह नहीं करते। उन्हे सफलता भी मिलती है। हाँ, यदि कोई उनमें टूटा है तो वह है रेखा जिसे अन्त में डा0 रमेश से शादी करनी पड़ती है। इसलिए नहीं कि शादी करना उसके लिए अनिवार्य था, मात्र इसलिए कि वह जीवन से समझौता करने के लिए विवश हो चुकी थी।

शेखर के मन में जो कुछ भी ग्रन्थि बनती है, वह मॉ–बाप के दुर्व्यवहार के करण। वह हर क्षेत्र में वैयक्तिक स्वच्छन्दता प्राप्त करने के लिए क्रान्ति करता है। यदि बच्चों के साथ बिना उसके अन्तर्मन को जाने मनमाना व्यवहार किया जायेगा तो दरअसल उनमें कुण्ठाएं, सन्देह, ग्रन्थियॉ आदि घर कर लेंगी। परिणाम स्वरूप हर प्रकार के पात्र कुण्ठित अस्वस्थ, विद्रूप तथा रुग्ण हो जायेगे। ऐसी स्थिति में समाज विकृति का विस्तार होगा। इससे बचने के लिए मानव मन की गहराइयों में बैठकर तदनुकूल व्यवहार करना होगा अर्थात् पहले उनके मन को समझना होगा। 'नदी के द्वीप' की रेखा 'शेखरः एक जीवनी' की शशि का दर्द समझना होगा। 'अपने–अपने अजनबी' के अस्तित्ववादी दर्शन को भी समझना होगा।

प्रेमचन्द के मनोविज्ञान विषयक विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि वे मनोवैज्ञानिक–चित्रण को साहित्य में अनिवार्य मानते थे। उन्होंने 'मैं कहानी कैसे लिखता हूँ' नामक निबन्ध में लिखा है कि–"लेकिन कोई घटना, कहानी नहीं होती, जब तक कि वह किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को व्यक्त न करे.... घटना और पात्र तो मिल जाते हैं लेकिन मनोवैज्ञानिक आधार कठिनता से मिलता है। यह समस्या हल हो जाने के बाद कहानी लिखने में देर नहीं लगती।" और प्रेमचन्द ने अपनी प्रायः अधिकांश कहानियॉ या उपन्यास किसी न किसी मनोवैज्ञानिक आधार को लेकर ही लिखी हैं, आलोचक भले ही उनमें उस आधार को ढूढ़ने में असमर्थ रहे हों। यह दोष प्रेमचन्द का नहीं बल्कि उन आलोचकों की बुद्धि का हो सकता है।

अज्ञेय मार्क्स के जीवन दर्शन की अपेक्षा एक नये जीवन दर्शन के निर्माण में डार्बिन, आइंसटीन तथा फ्रायड की देन को ही अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इसलिए उनके पात्र समाजोन्मुख अपेक्षतया बहुत ही कम हो पाते हैं। अन्तर्मुखता उनके पात्रों की विशिष्टता है।

ऐसा नहीं है कि वह बहिर्मुखी होना नहीं चाहते, बल्कि चाहकर भी नहीं हो पाते जैसे–शेखर। अज्ञेयजी के पात्र सदा आत्मचिन्तन में लीन दिखायी देते हैं। उनके अन्दर मानसिक द्वन्द्व चलता रहता है। रामेश्वर के मन में शशि की अपवित्रता को लेकर सदा इसी प्रकार का द्वन्द्व चलता रहता है। वह लड़ता है अपने आप से, अपने मन से, अपने सन्देह के कारण।

'नदी के द्वीप' की रेखा भी इसी मानसिक द्वन्द्व के कारण चकनाचूर हो जाती है। चन्द्रमाधव भी अकारण अपनी पत्नी से उदासीन होकर रेखा और गौरा की ओर आकृष्ट होता है। अपने–अपने अजनबी की तरुणी योके के मन में तो अपार मानसिक द्वन्द्व चल रहे हैं। वेश्या बना लिए जाने के बाद भी उसके मन में किसी नेक व्यक्ति को चुन लेने का संघर्ष चलता ही रहता है।

शेखर के लेखक का यह भी मन्तव्य है–"शेखर निःसन्देह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज है, तमबवतक व ि चमतेवदंस ेनमितपदह है, यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्ति के युग संघर्ष का प्रतिबिम्ब भी है। इतना और ऐसा निजी वह नही है कि उसके दावे को आप "एक आदमी की निजी बात कहकर उड़ा सकें, मेरा आग्रह है कि उसमें मेरा समाज और युग बोलता है कि वह मेरे और शेखर के युग का प्रतीक है।"[3]

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक समालोचना के तथाकथित स्थापक इलाचन्द्र जोशी ने प्रेमचन्द पर यह आरोप लगाया कि उनके कथा साहित्य में मनोविज्ञान का सफल चित्रण नहीं हो सका है, क्योंकि उन्हीं के शब्दों में–"उनके समस्त उपन्यासों में अधिकतर वाह्य जीवन के आद्यात–प्रद्यातों के चित्रण मिलते हैं–अन्तर प्रवृत्तियों के आधार से रहित।"[4] जोशीजी के अनुसार–"बाह्य जीवन का चित्रण तभी सच्ची सफलता प्राप्त कर सकता है

[3] शेखरः एक जीवनी भाग–1, भूमिका से, पृष्ठ–8

[4] साहित्य सन्देश, अक्टूबर–1944

जब अन्तर्जीवन चक्र पर आधारित हो।"[5] इस प्रकार जोशीजी अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण को ही किसी कृति की सफलता की कसौटी घोषित करते हुए अपना निष्कर्ष देते हैं कि–"औपन्यासिक कला के चमत्कार प्रदर्शन में और जीवन के किसी भी मार्मिक सत्य के उद्घाटन में वे पूर्णतया असफल रहे।"[6]

यदि प्रेमचन्द जीवन के किसी भी मार्मिक सत्य का, जोशीजी के आशयानुसार मनोवैज्ञानिक सत्य का सफल उद्घाटन नहीं कर सके तो आज उन्हें एक स्वर से हिन्दी का उपन्यास सम्राट अद्वितीय कहानी लेखक, जनता का सफल चितेरा, क्रान्ति का अग्रदूत क्यों माना जाता है। जोशी जी आदि के इस दृष्टिकोण का कारण यही है कि वे मनोविज्ञान को अत्यन्त संकुचित अर्थ में ग्रहण कर, अपनी ही भावनानुसार उसका चित्रण चाहते हैं, जो उन्हें प्रेमचन्द में नहीं मिलता है।

पं. नन्ददुलारे बाजपेयी जी ने जोशी जी की बात का खण्डन करते हुए लिखा है कि "प्रेमचन्द मनोविज्ञान का चित्रण मनोविज्ञान के लिए नहीं करते (जैसा कि जोशी, अज्ञेय आदि करते हैं), बल्कि जीवन की वास्तविकता का चित्रण करते हैं।"[7]

ये तथाकथित मनोवैज्ञानिक चित्रण करने वाले साहित्यकार करते यह है कि इन्होंने मनोविज्ञान की एक समस्या उठा ली और उसी के चारो तरफ अस्वाभाविक वातावरण का, जिसका समाज से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं होता, ताना–बाना बुनकर कथा का निर्माण कर देते हैं। मगर प्रेमचन्द तो जनता के लेखक थे। वे जनता को छोड़कर, समाज से नाता तोड़कर अचेतन मन की गहन गुफाओं में कैसे भटकते फिरते। उन्हीं की दृष्टि में, ऐसा करना साहित्य और समाज दोनों के प्रति गद्दारी होती।

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी क्षुब्ध होकर, शुद्ध मनोविज्ञान की दुहाई देने वालों को लताड़ते हुए कहा है कि –"उनकी बहुत सी कहानियों में मनोविज्ञान अनुशीलन की प्रभूत सामग्री मिलेगी, पर वे नूतन मनोविज्ञान से अभिभूत नहीं हुए। उनके समय में नूतन मनोविज्ञान आ तो चुका था, पर लेखकों को उसके दौरे नहीं आते थे। उसका दौर शुरू नहीं हुआ था। इस नूतन मनोविज्ञान की लहर पहले यूरोप में उठी थी। कलावादी आलोचक एवं साहित्यकार

साहित्य में इसी के अंकन पर जोर देने लगे थे। और यह सब इसलिए हुआ कि बढ़ते हुए यथार्थवाद की धारा को रोका जा सके।"[8] इस तरह नूतन मनोविज्ञान के समर्थक वे लोग हैं जो साहित्य की जनवादी भावना से भयभीत रहते हैं। 'शाश्वतवाद', 'कलावाद', 'अभिव्यंजनावाद', 'आदर्शवाद', 'प्रयोगवाद' आदि के प्रचारक ऐसे ही लोग रहे हैं। ये साहित्य सौन्दर्य की रक्षा की दुहाई देकर उसे जनसंपर्क से बचाना चाहते हैं। इसी मनोवृत्ति के लोगों ने फ्रायड के अन्धभक्तों ने प्रेमचन्द पर मनोविज्ञान की कमी का आरोप लगाया। सम्भवतः उन्हें ज्ञात हो चुका होगा कि फ्रायड के बहुत से मतों का खण्डन हो चुका है और यूरोप में मनोवैज्ञानिक इस नूतन मनोवैज्ञानिक चित्रण का विरोध करने लगे हैं।

भाषा प्रयोग की दृष्टि से अज्ञेय को प्रेमचन्द की तुलना में श्रेष्ठ या विशिष्ट तो नहीं माना जा सकता पर एक सजग, सावधान लेखक के रूप में उनकी गणना अवश्य की जा सकती है। अज्ञेय के उपन्यासों की भाषा में वह बैबिध्य नहीं है जो प्रेमचन्द के उपन्यासों में है, पर उन्हें इसकी जरूरत भी न थी, क्योकि प्रेमचन्द के उपन्यासों की तरह अज्ञेय के उपन्यासों में समाज का बहुवर्णी रूप प्रस्तुत करना उपन्यासकार का लक्ष्य नहीं था। पर अज्ञेय की भाषा औपन्यासिक पात्रों की विभिन्न मनःस्थितियों और अनुभूति के दीप्त क्षणों को वाणी देने में समर्थ हैं। अज्ञेय की भाषा अधिकतर लिखित भाषा है, अतः उसमें कसाव, मितव्ययिता, रचानात्मकता आदि गुणों की प्रधानता है। जहॉ भाषा पात्रों की सोच के रूप में आती है वहॉ भी उसमें कहीं ढीलापन या फिजूलखर्ची नहीं दिखती। दोष के रूप में तत्सम शब्दों के प्रति आकर्षण या मोह दिखायी पड़ता है, पर वह ऐसा नहीं जिसकी उपेक्षा न की जा सके।

अज्ञेय प्रायः अपने पात्रों को चिंतन की मुद्रा में डालकर उनकी मनःस्थिति का चित्र अंकित करते हैं। 'शेखरः एक जीवनी' में शेखर और शशि अनेकत्र चिंतनरत दिखायी पड़ते हैं। ऐसे अवसरों पर उनकी भाषा उनके मनोजगत का सही चित्र अंकित करने में समर्थ हुई है। उनके अभाषित प्रवचनों से उनके विभिन्न मनोभाव

[5] वही,
[6] वही,
[7] प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन– पं. नन्ददुलारे बाजपेयी
[8] (पं विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 'कहानी कला और प्रेमचन्द' के लेखक– श्रीपतिशर्मा की पुस्तक की भूमिका से)

व्यक्त होते हैं। उदाहरण के लिए जेल में शेखर की उद्विग्नता उसके निम्नलिखित चिंतन से कितनी सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई है–"मैं इस बंधन को तोड़ना चाहता हूँ, मुक्त होना चाहता हूँ, क्योंकि किसी को मुझे कुछ कहना है और वह जानना मेरे लिए आवश्यक है, सुख से अधिक आवश्यक, शांति से अधिक आवश्यक, जीवन से अधिक आवश्यक, मेरे बल से पुरुषार्थ से भी अधिक आवश्यक.....विवश, विवश विवश, मूर्ख क्रोध.....व्यर्थ, व्यर्थ, व्यर्थ, उद्भांत अहंकार..... ।"[9]

इस उद्धरण में कतिपय शब्दों की आवृत्ति से शेखर की उद्वेगपूर्ण मनःस्थिति सफलतापूर्वक अभिव्यक्त हुई है।

(डा. गोपाल राय, अज्ञेय और उनके उपन्यास, पृष्ठ– 188 द्वारा उद्घृत)

प्रेमचन्द के पात्र जिस वर्ग और भाषा के बोलने वाले होते हैं उनकी भाषा भी वैसी ही हो जाती है। हिन्दू और मुसलमान पात्रों की भाषा भिन्न–भिन्न होती है। बंगाली पात्र बंगला शैली में हिन्दी बोलते हैं। अफसरों की भाषा बिल्कुल दूसरी होती है। अनपढ़ और ग्रामीण पात्रों की भाषा अपनी अलग छटा दिखाती है। प्रेमचन्द ने लिखा है कि–"आदर्श व्यापक होने से भाषा अपने आप सरल हो जाती है। भाव सौन्दर्य बनाव श्रृंगार से बेपरवाही दिखा सकता है। जो साहित्यकार अमीरों का मुँह जोहने वाला है, वह रईसी रचनाशैली स्वीकार करता है, जो जनसाधारण का है वह जन साधारण की भाषा में लिखता है।"[10]

अज्ञेय प्रेमचन्द से अलग व्यक्तित्व के लेखक हैं। प्रेमचन्द सदृश होते तो सम्भवतः उनकी जरूरत भी उतनी नहीं होती। साहित्य के क्षेत्र में ऐसे व्यक्तित्वों को पूरक मानना चाहिए, क्योंकि अज्ञेय का मिजाज आत्मान्वेषण करने वाले लेखक का है, जीवन के मूल्यों का चिन्तन करने वाले लेखक का है। ऐसे लेखकों में जो जीवन आता है वह बाह्य तौर पर सामाजिक नहीं भी होता परन्तु एक उच्च स्तर पर सामाजिकता छन कर उनके चरित्रों के माध्यम से व्यक्त होती है।

प्रेमचन्द चूँकि आदर्शवाद की ओर उन्मुख उपन्यासकार थे अतः उन्होंने अपने कथानकों की कथावस्तु को एक आदर्श के रूप में स्थापित करने के लिए ही गढ़ा और उनके पात्रों की सोच भी उसी आदर्श के अनुकूल रही।

प्रेमचन्द के उपन्यासों के पात्र समाज का प्रतिनिधित्व करते से मालूम होते हैं। वह ऐसे चरित्र है जो अपनी अनुकरणीय भूमिका द्वारा समाज और मानव जीवन की शुद्धि के लिए भारी त्याग भी करते हैं। वह ऐसे आचरण से बंधे रहते हैं जो भारतीय संस्कृति की दृष्टि से समाज के लिए अनुकरणीय हैं।

'गोदान' में प्रेमचन्द ने होरी को ऐसे ही पात्र के रूप में चित्रित किया है, जो जीवन संघर्ष में पराजित हो गया था। इसी प्रकार उन्होंने 'सेवासदन' में 'कृष्णचन्द्र' को भी दिखाया है। इसी तरह के अन्य चरित्र भी हैं जो उनके उपन्यासों में बिखरे दिखायी देते हैं। हालांकि जहाँ वे आवश्यकता से अधिक सिद्धान्त और आदर्श की सीमा बढ़ाते हैं और पात्रों को मानसिक स्तर पर आदर्शों के बंधन में डाल देते हैं, वहीं पात्रों की गति में अस्वभाविकता आ जाती है। यह सत्य है कि वह अपने पात्रों की दुर्बलताओं और सफलताओं तथा उनकी मनोवृत्तियों का मार्मिक चित्रण करते हैं, परन्तु उनका चित्रण जब वह उन पात्रों को परिस्थितियों के प्रवाह से बचाकर, स्वयं उनको ये बताते हुए करने लगते हैं तो लगता है कि उनकी दुर्बलतायें या सबलतायें यथार्थ कल्पना मात्र सी है। यहाँ आकर वह हठी मनौवैज्ञानिक हो जाते हैं।

अज्ञेय के औपन्यासिक पात्र किस वर्ग के हैं, इस प्रश्न का उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं है। स्पष्टतः उनके पात्र औसत भारतीय नहीं हैं। उन्होंने निम्नवर्ग या निम्न मध्य वर्ग के पात्रों का चित्रण अपने उपन्यासों में नहीं किया है। उनके पात्र प्रायः उच्च या मध्यवर्ग से आते हैं पर ये पात्र भी अपने समाज की आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक समस्याओं का चित्रण उतना नहीं करते जितना अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का अथवा सामान्य भावनात्मक या विचारात्मक प्रश्नों का। इस कारण अज्ञेय के पात्र अपने वर्ग या समाज के भी अंग नहीं जान पड़ते। वे व्यक्ति के रूप में ही सामने आते हैं। वे प्रायः सामान्य और औसत से भिन्न, विशिष्ट, असाधारण होते हैं। 'शेखरः एक जीवनी' के शेखर, शशि, रामजी, मोहसिन, मदनसिंह, यहाँ तक कि शेखर के माता–पिता, शान्ति, मणिका आदि, 'नदी के द्वीप' और 'अपने–अपने अजनबी' के पात्र तो अपने समाज और वर्ग से बिल्कुल कटे हुए है। अतः अज्ञेय के उपन्यासों को किसी समाज या वर्ग विशेष का 'सच्चा चित्र' नहीं कहा जा सकता।

[9] शेखर एक जीवनी (दूसरा भाग), पृष्ठ– 61
[10] साहित्य का स्वरूप, प्रेमचन्द

इन उपन्यासों के पात्र बाहरी दुनिया से कम (शेखर को छोड़कर, क्योंकि वह बाहरी दुनिया से भी लड़ता है) अपनी आंतरिक समस्याओं से उन्हें हम मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक जो कहें, अधिक जूझते हैं। ये पात्र आर्थिक दृष्टि से मध्यमवर्गीय होकर भी बौद्धिक दृष्टि से उससे ऊपर हैं (स्वयं अज्ञेय के अनुसार भी) और इसलिए उनका चरित्र कुछ दूर तक अविश्वसनीय भी बन जाता है। इस प्रकार अज्ञेय के औपन्यासिक पात्रों को उनके वर्ग के संदर्भ में देखना कोई मायने नहीं रखता।

'अज्ञेय' और 'प्रेमचन्द' के औपन्यासिक पात्रों में बहुत असमतायें हैं फिर भी कुछ समानतायें भी हैं।

द्विवेदीयुगीन मनोरंजन और सोद्देश्यतावादी धारणा से सहसा हम वैचारिकता और उद्देश्य की खोज के जगत में प्रवेश कर जाते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों और उनके समवर्ती और उपन्यासकारों के मूल्यांकन करने से पता चलता है कि उपन्यास गोदान तक आते–आते प्रेमचन्द की समग्र चेतना और शायद उपन्यास लिखने की पद्धति का भी गोदान है। "मानव चरित्रों" पर प्रकाश डालने और रहस्यों की उद्घाटित करने के क्रम से वह व्यक्ति चरित्र तक पहुँच जाता है। होरी मानव चरित्र के साथ–साथ एक व्यक्ति भी दिखायी पड़ने लगता है। ''पिछले उपन्यासों से 'शेखर' इस अर्थ में भी भिन्न है कि उसमें व्यक्ति को भी उतनी ही बड़ी विचारणीय समस्या माना गया है जितना प्रेमचन्द युग में समाज को।''[11] उपन्यास के बारे में दृष्टिकोण का यह बदलाव मनुष्य के बारे में हमारे दृष्टिकोण के बदलाव से जुड़ा है और मनुष्य के कारण ही यथार्थ से भी।

वस्तुतः बुद्धि और हृदय के अविश्लेष्य घोल के बगैर रचना संभव ही नहीं है। अंगेजों से मुक्ति का अभियान, स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, स्वदेश और स्वभाषा के प्रति निष्ठा, अंग्रेजी का विरोध, जो प्रेमचन्द के उपन्यासों में एक पक्ष के रूप में प्रचार के स्तर तक व्याप्त है, शेखर में भी है। लेकिन शेखर पढ़े–लिखे उच्च–मध्यवर्ग और मध्य वर्ग की उस सोच को भी व्यंजित करता है जो कांग्रेस पार्टी और भद्र लोगों में पाखंड के रूप में व्याप्त है। मुखौटों को उतारकर उसके भीतर के चेहरे दिखाने का कार्य प्रेमचन्द में नहीं है और न उनका उद्देश्य है। गोदान में होरी और मेहता, दोनों ही समाज के चेहरे पर लगे इस मुखौटे को उतारते हैं। विजयदेव नारायण शाही ने लिखा है कि "गोदान वह स्थल है जहाँ से प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासकारों ने अपनी कथा आरम्भ की।"[12]

गोदान के अन्त में प्रेमचन्द ने होरी के चेतना प्रवाह का जो प्रमाण दिया है वह शेखर की तकनीक का प्रारूप है। "गोदान" और "शेखरः एक जीवनी" के दो उद्धरण इस दृष्टि से तुलनीय हैं।

"उसकी ऑखे बंद हो गयीं और जीवन की सारी स्मृतियाँ सजीव होकर हृदय पर आने लगीं, लेकिन बेक्रम, आगे की पीछे, पीछे की आगे, स्पप्न चित्रों की भॉति बेमेल, विकृत और असम्बद्ध, वह सुखद बालपन आया, जब वह गुल्लियों से खेलता था और मॉ की गोद में सोता था फिर देखा, जैसे गोबर आया है और उसके पैरो पर गिर रहा है। फिर हृदय बदला, धनिया दुल्हिन बनी हुई, लाल चुँदरी पहने उसको भोजन करा रही थी। फिर एक गाय का चित्र सामने आया, बिल्कुल कामधेनु–सी। उसने उसका दूध दुहा और मंगल को पिला रहा था कि गाय एक देवी बन गयी और...।"[13]

"देखता हूँ कुछ दृश्य हैं, जो बिजली की कौंध की तरह जगमग हैं, कुछ और हैं जो बुझ गये हैं और घटना के अनुक्रम का धागा तोड़ गये हैं, तोड़ ही नहीं, उलझा भी गये हैं, जिससे मैं उन ज्वलंत घटनाओं को भी ठीक कालक्रम से नहीं देखता–मनमाने कालक्रम से वे चलती हुई आती हैं और चली जाती हैं, और मैं दावे के साथ नहीं कह सकता कि क्या पहले हुआ, क्या पीछे हुआ। इतना ही कह सकता हॅ कि यह सब अवश्य हुआ, और इसमें यह ध्वनित नहीं है कि केवल इतना ही हुआ या इसी क्रम से हुआ।"[14]

दोनों उद्धरण अन्त और प्रारम्भ से मिलकर पुरानी कथा तकनीक के अन्त और नई कथा तकनीक की शुरुआत का आश्चर्यजनक संकेत प्रस्तुत करते हैं। "घटना" या कथानक के स्थान पर दृश्यों का कम्पोजीशन, अनुक्रम के स्थान पर बेक्रम बे–मेल, विकृति और असम्बद्धता, काल के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण मात्र का ही नहीं, यथार्थ के स्थिर जड़ और एक रस स्वरूप के प्रति दृष्टिकोण का भी बदलाव है।

[11] कुंवर नारायण, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–2
[12] शेखर एक जीवनीः विविध आयाम
[13] गोदान, पृष्ठ– 315
[14] शेखर–– भाग–2, पृष्ठ– 179

शेखर 'गोदान' की प्रतिक्रिया लगता है जो सिक्योरिटी सुख शान्ति और उन्नति को अस्वीकार करके "हर समय लड़ने को बाध्य" होना चाहता है। अपने हाथों ऐसे समाज को तोड़कर एक नया समाज बनाने का स्वप्न देखता है। यह उसके व्यक्तित्व का सबसे पुष्ट पहलू है जो अपने के पहले के सब औपन्यासिक व्यक्ति चरित्रों से भिन्न है।

विद्वान आलोचकों ने 'अज्ञेय' को डी0एच0 लारेंस, तुर्गनेव, रोम्यॉ रोला, वर्जीनिया वुल्फ, सार्त्र आदि पाश्चात्य साहित्यकारों से प्रेरित और प्रभावित माना है। स्वयं अज्ञेय ने अपने शेखर को रोम्यॉ रोला, के 'ज्यॉ क्रिस्तोफ' से प्रेरित स्वीकार किया है। प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करना विकासोन्मुख साहित्य का धर्म है। इसके लिए अज्ञेय की आलोचना नहीं की जा सकती। मूल प्रश्न है मनुष्य के प्रति व्यापक सहानुभूति का। यह सहानुभूति क्रमशः कम होती जा रही है। 'अज्ञेय' ने इसे स्वयं अनुभव किया है।

उन्होंने जिन पात्रों को सहानुभूति दी है, वे एक विशिष्ट वर्ग के प्राणी हैं। सम्पूर्ण मानवता को जितनी सहानुभूति और प्यार प्रेमचन्द ने दिया था, वह हिन्दी के नये उपन्यासकारों के लिए सम्भव नहीं है। 'अज्ञेय' भी इसके अपवाद नहीं हैं।

ओम प्रभाकर ने समीचीन ही कहा है कि "वस्तुतः अज्ञेय मानव मन के प्रणय, अहं, विद्रोह, कुण्ठा आदि वृत्तियों के साहित्यिक कलात्मक प्रक्षेपण की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी साहित्य में बेजोड़ हैं। फलस्वरूप मूर्धन्य आलोचक और उच्च कोटि के साहित्यकार मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि अज्ञेय प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास को नयी दिशा प्रदान करने वाले दूसरे उपन्यासकार हैं।" और सच बात तो यह है कि "गोदान" और "शेखरः एक जीवनी" के बीच कोई दूसरा उपन्यासकार नहीं आता।